

९५

संस्कृत साहित्य सोरभ

हिन्दी १८६

रघुवंश

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

८

कालिदास-कृत
रघुवंश

०१२५५

हि. १८७

श्री हरदयालुसिंह
द्वारा
कथा-सार

पुस्तक भंड के निमित्त है

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
संपादित

१९५८

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

तीसरी बार : १९५८

मूल्य

सैंतीस नये पैसे

मुद्रक

हिंदी प्रिंटिंग प्रेस

दिल्ली

संस्कृत साहित्य सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यंत समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिंदी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिंदी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर बहुत समय पहले हमने विचार किया था कि संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिंदी में प्रस्तुत करें और इस कार्य को संस्कृत-प्रेमी श्री हरदयालुसिंहजी से तभी प्रारंभ भी करा दिया था। उन्होंने कई ग्रंथों का कथासार हमारे लिए तैयार कर दिया था। हिंदी के पाठकों की सेवा में उन्हींको संपादित करके उपस्थित किया जा रहा है। दुःख की बात है कि इस बीच हरदयालुसिंहजी का देहांत हो गया और ये रचनाएं उनके जीवनकाल में प्रकाशित न हो सकीं।

इस पुस्तकमाला से हिंदी के सामान्य पाठक भी लाभ उठा सकें, इसलिए पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

तीसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चंद महीनों में तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

‘रघुवंश’ कालिदास के काव्य-ग्रंथों में सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें रघु-वंश का वर्णन है। राम इसी वंश में हुए थे। यह वर्णन राजा अग्नि-मित्र पर आकर समाप्त हो जाता है। इसमें इतिहास, कथा और काव्य सबका रस है। रघुवंश के वर्णन के वहाने कवि ने इस काव्य में आदर्शों की सृष्टि की है। इसमें ऐसे उपदेश भरे पड़े हैं, जो प्राणिमात्र के लिए उपयोगी हैं। असल में, उदार चरित्रवाले पुरुषों का स्वभाव कैसा हो, यही कवि ने इस काव्य में बताया है।

इस काव्य में कालिदास के समय की राजनीति का परिचय भी मिलता है, लेकिन वह कब हुए, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। जैसा-कि ‘शकुंतला’ की कथा में हम पहले लिख आये हैं, इनकी सफलता से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने अपनेको कालिदास कहा है। इतिहासकार इनका समय विक्रमी संवत् की पहली शताब्दी से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक मानते हैं। पर वह कभी हुए हों, कहीं हुए हों, ‘शकुंतला’ जैसे नाटक और ‘रघुवंश’ जैसे काव्य के लेखक होने के कारण वह अमर रहेंगे। उनका स्थान वाल्मीकि और व्यास की परंपरा में है। उनकी कविता में जो मिठास है, मानव-हृदय के सूक्ष्म भावों का जैसा निरीक्षण उन्होंने किया, उसका पूरा परिचय इस ग्रंथ में मिलता है। और जिस उपमा के कालिदास आचार्य हैं उसकी मनोहारी छटा इस ग्रंथ के छठे सर्ग ‘इंदुमति-स्वयंवर’ में देखी जा सकती है।

प्रकृति-वर्णन भी इसमें बहुत सुंदर हुआ है। इसमें भी उनका रुझान जितना भीतरी सुंदरता का वर्णन करना है उतना बाहरी नहीं। इसी कारण अनेक विद्वान इसे कालिदास के काव्यों में ही श्रेष्ठ नहीं मानते, बल्कि संस्कृत-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहते हैं।

—संपादक

रघुवंश

: १ :

सूर्यवंश में एक बड़े प्रतापशाली राजा हुए हैं। वैब-
स्वत उनका नाम था। इस वंश के यह पहले राजा थे।
इसी वंश में आगे जाकर सबको सुख देनेवाले और अत्यंत
शुद्ध चरित्रवाले राजा दिलीप हुए। यह भी वैसे ही
प्रतापी थे। इनकी राजधानी अयोध्या थी। विधाता ने
इनको सब प्रकार के सुख दिये थे, परंतु उनके कोई पुत्र
नहीं था। दिन बीतते जा रहे थे किंतु उनकी यह साध
पूरी नहीं हो पा रही थी।

इसी साध को पूरा करने के लिए एक दिन उन्होंने
अपना राज्य अपने मंत्रियों को सौंप दिया और रानी
सुदक्षिणा को साथ लेकर कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में
पहुंचे। दोनों ने चरण छूकर उनको प्रणाम किया।
कुशल प्रश्न के बाद गुरु वशिष्ठ ने राजा से वहां आने
का कारण पूछा। राजा ने अपने मन की व्यथा प्रकट
करते हुए उनसे निवेदन किया, “गुरुदेव, बिना पुत्र के
सारा राज्य और सारे सुख व्यर्थ मालूम होते हैं। पितरों
का भार मेरे सिर पर चढ़ रहा है। आप कोई ऐसा
उपाय बताइये कि जिससे मुझे एक पुत्र प्राप्त हो।” राजा
की बात सुनकर वशिष्ठ कुछ देर के लिए ध्यान-मग्न

हो गये । योग के बल से उन्होंने जान लिया कि राजा के पुत्र क्यों नहीं होता । वह बोले :

“राजन्, तुमको याद होगा कि एक बार जब तुम इंद्र की सेवा करके धरती की ओर लौट रहे थे तब रास्ते में कल्पवृक्ष के नीचे कामधेनु बैठी हुई थी । लेकिन तुमने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया । तुम्हारा ध्यान अपनी पत्नी की ओर था । इस कारण कामधेनु तुमसे रुष्ट हो गई और उसने तुमको शाप दिया कि जबतक तुम उसकी संतान की सेवा नहीं करोगे तबतक तुम्हें पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी ।

“उस समय आकाश में शोर होने के कारण तुमने वह शाप नहीं सुना, लेकिन तुम्हारे पुत्र न होने का कारण यही है । अब कामधेनु तो पाताल चली गई है, पर उसकी संतान नन्दिनी मेरे आश्रम में है । शुद्ध मन से तुम अपनी रानीसहित उसीकी सेवा करो । वह प्रसन्न होगई तो तुम्हारे मन की साध पूरी हो जायगी ।”

राजा और रानी ने गुरु का आदेश सिर नवाकर स्वीकार किया । वे वहीं रहने लगे । व्रत धारण करके उस रात वे कुशा की चटाई पर ही सोये और सवेरे वेद-मंत्रों की ध्वनि कानों में पड़ते ही उठ बैठे ।

: २ :

दूसरे दिन सवेरे सुदक्षिणा ने विधिपूर्वक नन्दिनी की पूजा की । दिलीप ने बछड़े को दूध पिलाकर खूँटे से बांध दिया और गाय को वन में चरने के लिए छोड़ दिया ।

वन में कुछ दूर जाने पर राजा ने केवल रानी को ही नहीं, बल्कि सेवकों को भी आश्रम लौटा दिया । वह अकेले ही धनुष-बाण चढ़ाकर छाया के समान उसके पीछे-पीछे चलने लगे । कभी वह उसे कोमल घास खिलाते, कभी शरीर पर हाथ फेरते, तो कभी मक्खियों और मच्छरों को उड़ाते । जहां वह बैठती, वहीं वह बैठते । जब वह पानी पीती तभी वह पानी पीते । इस तरह सेवा करते देखकर वन के जंतु भी उनको जान गये । घूमते-घूमते उनके सिर की लटे जंगल की लताओं की की तरह उलझ गई । संध्या के समय जब नंदिनी आश्रम को लौटी तब राजा भी पीछे-पीछे लौटे । रानी उनके अनोखे वेश को देखती रह गई, लेकिन शीघ्र ही आगे बढ़कर उसने नंदिनी की पूजा की । फिर रात में दूध दुहे जाने के बाद राजा रानी के साथ देर तक उसकी पूजा-सेवा करते रहे । जब वह सो गई तब वे दोनों भी सोने गये । सुबह उसके उठने से पहले ही उन दोनों की नींद टूट गई और वे फिर सेवा-कार्य में लग गये । यह उनका रोज का कार्यक्रम हो गया ।

इस प्रकार व्रत का पालन करते हुए जब इक्कीस दिन बीत गये तब एक दिन नंदिनी ने राजा की भक्ति व सेवा की परीक्षा लेने का विचार किया । अगले दिन चरते-चरते वह हिमालय की एक गुफा में चली गई । वहांपर एक सिंह ने अचानक उसको दबोच लिया । वह बड़े जोर से रम्भाने लगी । उसकी पुकार सुनकर दिलीप का ध्यान उस ओर गया । उन्होंने तुरंत सिंह को मारने

के लिए धनुष संभाला, लेकिन तरकस में से तीर निकालने के लिए जैसे ही उन्होंने हाथ उठाया वैसे ही उनकी अंगुलियां तीरों के पंखों से चिपक गईं। राजा ने बहुत प्रयत्न किया, पर अंगुलियां नहीं छूटीं। वह क्रोध के मारे तमतमा उठे। यह देखकर सिंह मनुष्य की वाणी में बोला, “हे राजा, मुझे मारने का जतन मत करो। मैं भगवान् शंकर का सेवक हूं। मेरा नाम कुम्भोदर है। वह सामने जो देवदार का पेड़ दिखाई देता है, भगवान् शंकर उसे अपने पुत्र के समान मानते हैं। देवी पार्वती ने उसे अपने हाथों से सींचा है। एक बार एक जंगली हाथी की रगड़ से इसकी छाल छिल गई थी। इससे पार्वती को बड़ा दुःख हुआ था। तभी से उन्होंने मुझे इसकी रक्षा के लिए नियुक्त किया है। यहां जो पशु आ निकलता है, उसी-को खाकर मैं अपनी भूख मिटाता हूं। आज यह गाय मेरे भाग्य से ही ठीक समय पर यहां आ गई है। यह मेरे भोजन के लिए बहुत है। तुम इसे बचाने का प्रयत्न मत करो। तुम अपना कर्तव्यपालन कर चुके। तुमने दिखला दिया कि तुम गुरुभक्त हो। अब यहां से लौट जाओ।”

राजा ने जब वाण चलाने में अपनेको असमर्थ पाया तो हाथ जोड़कर उसने सिंह से कहा, “मैं सबकुछ करनेवाले शिव का बड़ा आदर करता हूं, पर अपने गुरु की इस गाय को आंखों के आगे मरते नहीं देख सकता। तुमको भोजन ही चाहिए। तुम इस गाय को छोड़ दो और मुझे खाकर अपनी भूख मिटाओ।” लेकिन सिंह नहीं माना। राजा भी डठा रहा। आखिर उसने कहा,

“इतनी देर बातें करके हम मित्र हो गये हैं। तुम मित्र की बात मत टालो और मुझे खाकर गाय को छोड़ दो।” सिंह ने यह बात स्वीकार कर ली। राजा सिंह के आगे लेट गया और हमले की राह देखने लगा। लेकिन हुआ यह कि आकाश से फूल बरसने लगे। नंदिनी की मीठी वाणी सुनाई दी।

“पुत्र, उठो। मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी। मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हूँ। वर मांगो।”

राजा ने सिर उठाया। सिंह वहाँ कहीं नहीं था। उसने नंदिनी को प्रणाम किया और वर मांगा कि उसके ऐसा यशस्वी पुत्र हो जो उसके वंश को चला सके। नंदिनी ने उसकी इच्छा पूरी करने का वचन दिया और कहा, “एक दोने में मेरा दूध दुहकर पी जा।”

राजा बोला, “बछड़े को पिलाकर बाकी जो बचेगा उसे मैं गुरु की आज्ञा लेकर पीऊंगा।” यह सुन नंदिनी बड़ी प्रसन्न हुई।

शाम को दोनों प्रसन्न मुख आश्रम में लौट आये। उनकी प्रसन्नता देखकर वशिष्ठ सब-कुछ समझ गये। राजा ने अपने-आप भी उन्हें सब हाल कह सुनाया। रानी ने भी सब बातें सुनीं। उसके बाद ठीक समय दूध दुहा गया और जब बछड़ा दूध पी चुका तब राजा ने भी नंदिनी का दूध पिया। इस प्रकार राजा और रानी का व्रत और मनोकामना पूर्ण हुई। वे गुरु की आज्ञा लेकर अपनी राजधानी लौट आये।

: ३ :

कुछ समय बाद शुभ मुहूर्त और शुभ घड़ी में रानी सुदक्षिणा ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। उसके ग्रह बहुत अच्छे थे और उसके जन्म के समय सभी शकुन अच्छे हो रहे थे। यह समाचार पाकर अयोध्या में चारों ओर हर्ष और आनंद उमड़ने लगा। यथासमय बालक के विधिवत् सब संस्कार किये गये। वह बहुत सुंदर था। उसका नाम रघु रखा गया।

धीरे-धीरे रघु बड़े हुए। वह बड़े बुद्धिमान थे। शीघ्र ही उन्होंने चारों विद्याएं सीख लीं। फिर समय आने पर उनका विवाह हुआ और जब दिलीप ने देखा कि शिक्षा आदि संस्कारों से रघु नम्र बन गये हैं तो उन्होंने उनको युवराज बना दिया। उसके साथ ही घोड़े की रक्षा का भार उनपर छोड़कर राजा दिलीप ने ६६ अश्वमेध-यज्ञ पूरे कर लिये। जब सौवें यज्ञ की तैयारी कर रहे थे तब देवताओं का राजा इंद्र डर गया कि अगर दिलीप ने सौ अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण कर लिये तो वह उनका पद प्राप्त कर लेंगे। इस कारण उन्होंने चुपके से यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया। अश्व-रक्षक सैनिक बड़े घबराये, परंतु नंदिनी की कृपा से रघु को इस चोरी का पता लग गया। तब तुरंत उन्होंने इंद्र को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। देवेंद्र राजकुमार रघु का साहस देखकर चकित रह गये और प्रशंसा करने लगे। उन्होंने यज्ञ का घोड़ा तो नहीं दिया, लेकिन दिलीप को सौ अश्वमेध-यज्ञों का पुण्य मिल गया। दिलीप

को जब यह समाचार मिला तो वह बड़े प्रसन्न हुए ।

कुछ समय बाद रघु को राज सौंपकर वह रानी सुदक्षिणा के साथ वन में तपस्या करने चले गये ।

: ४ :

रघु के राजा होते ही उनका प्रताप चारों ओर फैल गया । उनके सुशासन में प्रजा राजा दिलीप को भी भूल-सी गई । चारों ओर सुख-चैन की बंसी बचने लगी । सूर्य और चंद्र के समान प्रजा का रंजन करके रघु ने अपना राजा बनना सार्थक कर दिया ।

फिर शरद् ऋतु आने पर इंद्र के समान प्रतापी राजा रघु, अपने राज्य का सुप्रबन्ध करके, एक बड़ी सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकल पड़े । सबसे पहले उन्होंने पूर्व दिशा में बंगदेश को अपने अधीन किया । फिर कलिंग महेंद्रादि को जीतते हुए मलयाचल तक जा पहुंचे । दक्षिण के पाण्ड्य राजा भी उनके सामने न ठहर सके । उन्हें जीतकर वे दुर्दर नाम की पहाड़ियों पर विहार करते रहे । फिर सह्याद्रि को पार करके वह पश्चिम की ओर बढ़े । वहां के राजाओं से कर लेकर पारसी राजाओं को जीतने के लिए उन्होंने स्थल का मार्ग पकड़ा । पश्चिमी देश के घुड़सवार राजाओं को पराजित करते हुए वह सिंधु-तट पर पहुंच गये । उन्होंने हूणों को खदेड़ा । काबुल का राजा भी उनके सामने न टिका । कम्बोज को हराकर वह नगाधिराज हिमालय पर चढ़ गये । पहाड़ी सेनाओं से रघु की सेना का घमासान युद्ध हुआ । रघु की सेना इतनी वीरता से लड़ी कि किन्नर

लोग उनके गीत गाने लगे । राजाओं ने उन्हें रत्न भेंट किये । वहां से लौहित्य नदी को पार करके वह प्राग्ज्योतिष (असम) पहुंचे । उसने बिना लड़े ही अधीनता स्वीकार कर ली । इस प्रकार विजयी रघु सारी पृथ्वी को जीतकर अयोध्या लौट आये । वहांपर उन्होंने विश्वजित् यज्ञ किया । उसमें उन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया और अपने साथ आये हुए सारे राजाओं को सम्मान-सहित अपने-अपने राज्यों को विदा किया ।

: ५ :

राजा रघु विश्वजित् यज्ञ में सर्वस्व दान करके बैठे ही थे कि वरतंतु मुनि के शिष्य कौत्स वहां आ पहुंचे । वह गुरु-दक्षिणा के लिए स्वर्ण मुद्राओं की याचना करने आये थे । पर सर्वस्व दान की बात जानकर वह सकुचा गये । राजा ने उनका अभिवादन करके आने का कारण पूछा । लेकिन अपनी इच्छा प्रकट करने का उनमें साहस न हुआ । जब रघु ने बहुत आग्रह किया तो उन्होंने कहा, “गुरु-दक्षिणा देने के लिए मुझे १४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं चाहिए थीं, लेकिन आपके हाथ में मिट्टी का पात्र देखकर मैं समझ गया हूं कि आपके पास ‘राजा’ शब्द छोड़कर और कुछ भी नहीं बचा है । अब मेरा मन ही नहीं करता कि आपसे कुछ मांगूं ।” राजा रघु ने उनको आदर-पूर्वक अतिथिशाला में ठहराया और आश्वासन दिया कि वह कौत्स-जैसे वेदपाठी को निराशानहीं लौटने देंगे । कुछ-न-कुछ प्रयत्न करेंगे । इसके बाद उन्होंने

सोचा कि और तो कहीं धन है नहीं, धनपति कुबेर पर आक्रमण करके धन प्राप्त किया जाय। इस प्रकार निश्चय करके राजा रघु ने दूसरे दिन सेना लेकर धनपति कुबेर पर आक्रमण करने की तैयारी की। पर जैसे ही वह चलने को तैयार हुए वैसे ही कोषाध्यक्ष ने आकर उनको सूचना दी कि रात बहुत देर तक खजाने में सोना बरसता रहा है। यह समाचार पाते ही राजा ने कौत्स को अतिथिशाला से बुला भेजा और सारा सोना उनको भेंट कर दिया। लेकिन संतोषी ब्राह्मण ने आवश्यकता से अधिक धन लेने से इंकार कर दिया। वह एक अद्भुत दृश्य था। चलते समय कौत्स ने राजा को आशीर्वाद दिया, “जैसे तुम्हारे पिता को तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ पुत्र मिला है वैसे ही तुम्हारे समान तुम्हें भी प्रतापी पुत्र मिले।”

कुछ समय बाद रघु के यहां कुमार अज का जन्म हुआ। रूप, गुण और बल सभी बातों में वह अपने पिता के समान था। किसी भी बात में कम नहीं था। जब वह युवा हुआ तब विदर्भ देश के राजा भोज ने अपनी बहन इंदुमती के स्वयंवर में बुलाने के लिए रघु के पास अपना विशेष दूत भेजा। अज बड़े ठाठ-बाट के साथ विदर्भ देश को रवाना हुए। रास्ते में नर्मदा के तट पर एक जंगली हाथी ने उनकी सेना में बड़ा उपद्रव मचाया। अज ने उसे डराने के लिए जब हल्का-सा वाण मारा तो हाथी ने अपना शरीर छोड़कर देवताओं के समान सुंदर शरीर धारण कर लिया। उसने बताया, “मैं गंधर्वों के राजा

प्रियदर्शन का पुत्र प्रियंवद हूं। मतंग ऋषि के शाप के कारण मैं हाथी हो गया था। आपके हाथ से मेरी मुक्ति ऋषि ने बताई थी। इसीलिए मैं आपकी राह देखा करता था। आज आपने मुक्ति देकर मुझपर जो उपकार किया है उसके बदले मैं आपको सम्मोहन नाम का गंधर्वास्त्र देता हूं।”

बड़े संकोच से वह अस्त्र लेकर तथा प्रियंवद से मित्रता करके अज विदर्भदेश की ओर चल पड़े। वहां पहुंचने पर महाराज भोज ने उनका इतना सम्मान किया कि लोग उन्हें ही घर का स्वामी और भोज को अतिथि समझने लगे। अगले दिन अज ने सुंदर वस्त्र धारण किये और सज-धजकर स्वयंवर के स्थान की ओर चल पड़े।

: ६ :

स्वयंवर-मंडप की शोभा ही निराली थी। देश-देश के राजा अपने-अपने स्थानों पर बैठे हुए ऐसे सुंदर लग रहे थे मानों विमानों पर देवता बैठे हुए हों। अज भी एक रत्न-जड़ित सोने के मंच पर जाकर बैठ गये। जैसे नंदन वन के वृक्षों में पारिजात ही सबसे अधिक सुंदर है वैसे ही उन राजाओं में अज सबसे सुंदर लग रहे थे। कुछ देर बाद महाराज भोज की बहन इंद्रुमती पालकी में चढ़ कर रंगभूमि में आई। वह ब्रह्मा की रचना की एक बहुत ही सुंदर कला थी। सारे राजाओं की आंखें उसकी ओर लग गईं। अपना प्रेम प्रकट करने के लिए वे तरह-तरह की चेष्टाएं करने लगे। उधर पुरुषों के समान रनवास की

ढीठ प्रतिहारी सुनंदाने सब राजाओं का परिचय कराना शुरू किया। वह एक के बाद एक, प्रत्येक राजा के वंश, प्रताप, शूरता आदि सबका वर्णन करती जाती थी। मगधराज, अंग-नरेश, अवंती-नरेश, अनूप राजा, मथुरेश, कलिगाधीश, नागपुराधिपति, इन सबको अस्वीकार करती हुई इंदुमती युवराज अज के सामने जाकर रुक गई। सुनंदा चतुर थी। वह राजकुमारी के मन की बात ताड़ गई। उसने अज का परिचय विस्तार से कराया। उनका रूप देखकर तथा उनके गुणों की गाथा सुनकर इंदुमती ने वर-माला सुनंदा के हाथों से लेकर अज के गले में पहना दी। यह समाचार सुनकर नगर-निवासी एक साथ बोल उठे—यह तो चांदनी और चंद्रमा का मेल हुआ है।

: ७ :-

स्वयंवर के बाद भोजराज अज और इंदुमती को लेकर नगर की ओर चल पड़े। उनको देखने के लिए नगर की सुंदरियां अपना-अपना काम छोड़कर झरोखों में आ खड़ी हुईं और तरह-तरह के वचन कहकर उनकी प्रशंसा करने लगीं। उनकी बातें सुनते हुए राजकुमार अज राजभवन में पहुंचे। वहां धूमधाम के साथ उनका इंदुमती के साथ विवाह संपन्न हुआ। विवाह के बाद आगत-नरेशों का भोजराज ने बहुत सम्मान किया और उन सब को आदरपूर्वक विदा दी। वे राजा उस समय तो कुछ न बोले, परंतु उनको यह बात बहुत बुरी लगी कि इंदुमती ने उनको वरण नहीं किया। इसलिए अज जब इंदुमती

के साथ अयोध्या लौट रहे थे तब एकाएक सब राजाओं ने उनपर हमला कर दिया । अज ने इंदुमती की रक्षा का भार तो अपने पिता के मंत्री को सौंप दिया और स्वयं राजाओं की उस सेना को रोककर ऐसे खड़े हो गये, जैसे बाढ़ के दिनों में सोन-नद गंगा की धारा को रोक लेता है । घोरसंग्राम हुआ । अंत में सम्मोहनास्त्र चलाकर अज ने उन सबको हरा दिया और विजय-पताका फहराते हुए वह इंदुमतीसहित अयोध्या आ पहुंचे । महाराज रघु को सबकुछ मालूम हो चुका था । उन्होंने विजयी अज का स्वागत किया और फिर उन्हें कुटुंब का भार सौंपकर वह मुक्ति-मार्ग की खोज में तपस्या करने चले गये ।

: ८ :

जब रघु राज त्यागकर वन जाने के लिए तैयार हुए तो अज ने अपना सिर उनके चरणों में रखकर प्रार्थना की कि वह उसे छोड़कर न जायं । रघु अज को बहुत प्यार करते थे । वह वन नहीं गये, परंतु उन्होंने राजलक्ष्मी को फिर स्वीकार नहीं किया । संन्यास लेकर वह नगर के बाहर रहने लगे । अज ने राजसिंहासन पर बैठकर और रघु ने संन्यास लेकर अपने-अपने क्षेत्र में लोकोत्तर सफलता प्राप्त की । कुछ काल बाद महाराज रघु ने योगाभ्यास द्वारा अपना शरीर त्याग दिया । अज ने उनका विधिवत संस्कार किया और सुख एवं शांति से प्रजापालन करने लगे । कुछ समय बाद उनके घर में दशरथ नाम का महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ ।

एक दिन महाराज अज अपनी वाटिका में रानी इंदुमती के साथ विहार कर रहे थे कि इतने में आकाश-मार्ग से देवर्षि नारद भगवान का गुणगान करते हुए उधर से गुजरे । उनकी वीणा पर स्वर्गीय फूलोंवाली माला लटक रही थी । वह एकाएक नीचे इंदुमती पर गिर पड़ी । उसे देखते ही व्याकुल होकर रानी ने आंखें मूंद लीं । उनके प्राण निकल गये ।

अपनी प्राणप्रिया पत्नी को इस प्रकार एकाएक निष्प्राण होते देखकर महाराज अज को बहुत दुःख हुआ । वह उसे अपनी गोदी में लेकर दारुण विलाप करने लगे । उन्होंने इस प्रकार विलाप किया कि वृक्ष भी रो पड़े । बहुत समझाने-बुझाने पर कहीं वह शांत हुए और उन्होंने इंदुमती का यथाविधि दाह-संस्कार किया । जब वह नगर लौटे तो इतने उदास थे कि उन्हें देखकर नगरभर की नारियां फूट-फूटकर रोने लगीं । वशिष्ठ मुनि तब यज्ञ कर रहे । योगबल से सब बातें जानकर उन्होंने राजा के पास एक संदेश भेजा । उन्होंने बताया कि इंदुमती पूर्वजन्म में स्वर्ग की अप्सरा थी । एक ऋषि के शाप से वह नारी बनकर तुम्हारी रानी बनी । उसकी मुक्ति स्वर्गीय पुष्पों को देखने पर होती थी । वैसा ही हुआ । तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए । महाराज अज ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की और किसी तरह आठ वर्ष बिता दिये । पर वह पूरी तरह संभल न सके । शोक उनके शरीर को जर्जर करता रहा । अंत में उन्होंने

अपने प्रतापी पुत्र दशरथ को राज्य-भार सौंप दिया और स्वयं सरयू नदी के किनारे अनशन करने लगे । थोड़े दिन बाद वह भी मुक्त हो गये ।

: ६ :

राज्य पाकर राजा दशरथ ने अपने पराक्रम से चारों ओर यज्ञ और प्रताप का विस्तार किया । सुरेश्वर इंद्र तक उनकी धाक मानते थे । उनके कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी तीन रानियां थीं । उन्होंने यज्ञ और दिग्विजय साथ-साथ आरंभ किये । यह यज्ञ समाप्त होने पर उनका अभिनंदन करने के लिए बसंत ऋतु भी उनकी सेवा में उपस्थित हुई । सारे राज्य में बसंती छटा छा गई । विष्णु के समान पराक्रमी राजा दशरथ भी उसका आनंद लेने लगे ।

ऐसे समय में उनके मन में आखेट करने की इच्छा जाग उठी । मंत्रियों से सलाह करके वह शिकार खेलने के लिए निकल पड़े । वह रोज अनेक जंगली पशुओं का शिकार करते और रात को देर तक जंगल में घूमते रहते । एक रात को वह वन में पशुओं की खोज करते-करते तमसा नदी के किनारे जा पहुंचे । वहां कोई जल में घड़ा डालकर भर रहा था । उन्होंने समझा कि यह कोई हाथी है, सो भट शब्दवेधी वाण चला दिया । पर वह हाथी नहीं था, एक ब्राह्मण कुमार था, जो अपने अंधे माता-पिता को कांवर में बिठाकर तीर्थयात्रा के लिए लेजा रहा था । वाण की चोट खाकर वह मर गया । जब उसके अंधे माता-पिता को पुत्र के मर जाने का शोक-समाचार

मिला तो दुखी होकर उन्होंने दशरथ को शाप दिया, "हे राजा, जाओ तुम भी हमारे ही समान बुढ़ापे में पुत्र-शोक में प्राण छोड़ोगे !"

अपने पाप से अधीर हृदय में मुनि का शाप लिये हुए वह घर लौट आये ।

: १० :

इंद्र के समान तेजस्वी राजा दशरथ ने बहुत वर्षों तक राज्य किया । वह बूढ़े हो गये, पर उनको संतान का सुख न मिला । तब उन्होंने शृंङ्गी ऋषि के कहने पर पुत्रेष्टि-यज्ञ किया । उसी समय रावण के अत्याचार से दुखी देवगण विष्णु की शरण में गये । उन्होंने शीघ्र राजा दशरथ के घर जन्म लेकर रावण को नष्ट करने का आश्वासन दिया । कुछ मास बाद राजा दशरथ के चार पुत्र हुए । उनके नाम थे राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न । राम कौशल्या के पुत्र थे, भरत कैकयी के और लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न सुमित्रा के । समय पाकर चारों राजकुमार बड़े हुए और सब तरह की विद्याएं सीखने लगे । चारों राजकुमारों में परस्पर बड़ा प्रेम था, परंतु फिर भी राम-लक्ष्मण में तथा भरत-शत्रुघ्न में विशेष प्यार था । इन चारों पितृभक्त राजकुमारों ने राजा दशरथ को अपने गुणों से मोह लिया । वे ऐसे शोभा देते थे मानो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हों ।

: ११ :

एक बार महामुनि विश्वामित्र राजा दशरथ के दरबार में आयें और उन्होंने यज्ञ की रक्षा के लिए राम,

लक्ष्मण को उनके साथ भेज देने को कहा । राजा दशरथ ने तुरंत दोनों को मुनि के साथ भेज दिया ।

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लेकर अपने आश्रम लौट रहे थे कि रास्ते में ताड़का नामक राक्षसी ने उनपर अचानक आक्रमण कर दिया । राम ने उसका वारसंभाल लिया और अपने वाण से उसका वध कर डाला । राम की वीरता से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उनको राक्षसों का संहार करनेवाला दिव्य अस्त्र मंत्र-सहित दे दिया । बाद में यज्ञ की रक्षा करते हुए दोनों भाइयों ने मारीच और सुबाहु से युद्ध किया । सुबाहु को उन्होंने मार डाला । मारीच भाग गया । इस प्रकार विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया । इसी बीच मिथिला के राजा जनक की ओर से सब ऋषि-मुनियों को स्वयं-वर का निमंत्रण मिला । राम-लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र जनकपुर की ओर चल पड़े । रास्ते में रामचंद्र ने अहिल्या का उद्धार किया । जनकपुर पहुंचने पर उन्होंने अजगर के समान शंकर के धनुष को तोड़ डाला । तब राजा जनक ने सीताजी का विवाह राम के साथ कर दिया । साथ ही राजा जनक की दूसरी पुत्री उर्मिला का विवाह लक्ष्मण के साथ तथा छोटे भाई कुशध्वज की दोनों पुत्रियों मांडवी और श्रुतिकीर्ति का विवाह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न के साथ संपन्न हो गया ।

विवाह के बाप अयोध्याको जाते हुए रास्ते में, रामचंद्र की भेंट परशुराम से हुई । भगवान् शंकर का धनुष तोड़े जाने पर वह रामचंद्र से बहुत

क्रुद्ध थे । उन्होंने रामचंद्र के बल की परीक्षा ली । रामचंद्र उसमें सफल हुए । यह देखकर परशुराम शांत हो गये । उन्होंने अपनी हार मान ली । वह रामचंद्र को आशीर्वाद देकर तप करने चले गये ।

राम की इस विजय से राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए ।

: १२ :

महाराज दशरथ जब बूढ़े हो चले तो उन्होंने रामचंद्र को राज सौंप देने का निश्चय किया । पर उनकी तीसरी रानी कैकेयी ने सब गड़बड़ कर दिया । उसने अपने लड़के भरत के लिए राज्य और रामचंद्र के लिए १४ वर्षों का वनवास मांगा । राजा दशरथ रानी को एक बार दो वर दे चुके थे । इसलिए अपना वचन पालन करने के सिवाय उनके सामने और कोई रास्ता न था । इस वर मांगने का एकमात्र फल यही निकला कि कैकेयी विधवा होगई । पिता के वचन सत्य करने के लिए राम लक्ष्मण और सीता के साथ वन को चले गये । उनके मुख का भाव अब भी वैसा ही था जैसा राज्याभिषेक के रेशमी वस्त्र पहनते समय था । उनके जाने के बाद राजा दशरथ ने पुत्र-प्रेम के कारण शरीर छोड़ दिया । भरत उन दिनों अपने ननिहाल गए हुए थे । उनको बुलाया गया । सब समाचार जानकर वह अपनी मां के साथ-साथ राज्य-लक्ष्मी से भी चिढ़ गये । पिता का अंतिम कर्म करने के बाद वह राम को लौटा लाने के लिए वन गये । पर स्वर्गीय पिता की आज्ञा के कारण राम

न लौटे । तब भरत राम के पैरों की खड़ाऊं लेकर लौट आये, पर वह अयोध्या नहीं गये, नंदिग्राम में रहने लगे । वहींपर खड़ाऊओं को राजसिंहासन पर रखकर उन्होंने राज्य की इस प्रकार रक्षा की, मानो अपने भाई की धरोहर संभाल रहे हों ।

रामचंद्र उस समय चित्रकूट पर्वत पर रहते थे । लोगों का आना-जाना वहां होने लगा, इस कारण वह दक्षिण की ओर जंगल में चले गये और पंचवटी नामक स्थान में रहने लगे । एक बार लंका-नरेश रावण की छोटी बहन शूर्पणखा रामचंद्र के रूप-गुण को प्रशंसा सुनकर वहां आई और उनसे विवाह का प्रस्ताव किया । बातों-ही-बातों में नौबत यहांतक आ गई कि लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये । इसपर वह विलाप करती हुई अपने भाई खर और दूषण के पास पहुंची । वे तुरंत राम से लड़ने आये, परंतु सेना-सहित मारे गये । यह समाचार जब रावण के पास पहुंचा तो बहन के अपमान और संबंधियों के वध के कारण वह तिलमिला उठा । तब वह मारीच की सहायता से धोखा देकर सीता को चुरा ले गया । राम-लक्ष्मण सीता के खो जाने से बड़े दुखी हुए । वे उनकी खोज में जंगल में भटकने लगे । मार्ग में एक जगह उनको घायल जटायु मिला । उसने बताया कि सीता को रावण चुराकर ले गया है । वह रावण से बुरी तरह लड़ा था, पर सीता को बचा न सका । इतना कहकर वह चल बसा । राम और भी दुखी हुए । जटायु उनके पिता का मित्र था । उन्होंने उसका दाह-

संस्कार किया । आगे बढ़े तो उन्हें कबंध मिला । वह किसी ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था । उसके हाथ काटकर राम ने उसे मुक्ति दी । उसीसे उन्हें सुग्रीव का पता लगा ।

बाली और सुग्रीव दो भाई थे । दोनों में वैर चला आ रहा था । बाली बड़ा दुष्ट था । उसने सुग्रीव को राज्य से निकाल दिया था और उसकी स्त्री को भी छीन लिया था । पंपापुरी में इसी वानरराज सुग्रीव से राम की भेंट हुई । पराक्रमी राम ने सुग्रीव का पक्ष लेकर बाली को मार गिराया और उसे गद्दी पर बैठाया । इस उपकार के बदले सुग्रीव ने सीता की खोज में राम की पूरी मदद की । जटायु के भाई संपाति से पता लगा कि सीता लंका में हैं । तब सागर पार करके हनुमान ने सीता से भेंट की । लौटकर उन्होंने राम को सब समाचार दिये । राम बड़े प्रसन्न हुए और वानरों की सहायता से उन्होंने लंका पर आक्रमण करने की योजना बनाई । जब वह सागर के तट पर पहुंचे तो रावण का छोटा भाई विभीषण उनसे आ मिला । वानरों ने सागर पर एक मज्जबूत पुल बनाया और फिर उसपरसे होकर उन्होंने लंका को घेर लिया । इस युद्ध में अपने सारे कुल सहित रावण मारा गया । मेघनाद और कुंभकरण भी न बच सके । बचा केवल विभीषण । उसीको राज्य देकर सीतासहित राम पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या लौट चले । विभीषण और सुग्रीव आदि भी उनके साथ थे ।

: १३ :

रामचंद्र ने विमान के ऊपर से अपने वनवास के समय के सारे निवास-स्थान सीता को दिखाये । किस प्रकार वे उन्हें खोजते फिरे थे और कहाँपर कौन मिला था, क्या घटना हुई थी, सब समझाया । फिर पंचवटी, प्रयाग में संगम और निषादराज गुह के नगर पर से उड़ते हुए वह सरयू तट पर आ पहुँचे । भरत ने पहले से ही रामचंद्र के स्वागत का प्रबंध कर रखा था । वशिष्ठ मुनि को आगे करके पैदल, चीर पहने, हाथ में पूजा की सामग्री लिये भरत राम के पास आये । पुष्पक विमान से उतरकर राम ने सबसे पहले गुरु को प्रणाम किया । फिर आँखों में आंसू भरकर भरत को बड़े प्रेम से छाती से लगा लिया । वह मिलन बड़ा अद्भुत था । सब एक दूसरे से भेंटे और फिर आधा कोस चलकर उन्होंने अयोध्या के उस सुंदर उपवन में डेरा जमाया, जिसे शत्रुघ्न ने पहले से सजा रखा था ।

: १४ :

उपवन में पहुँच राम माताओं से मिले । अपने पुत्रों को देखकर उनकी आँखों से आनंद के ठंडे आंसू बहने लगे । उन्होंने शोक के गरम आंसुओं को भी ठंडा कर दिया । सीता को उठाते हुए माताओं ने बड़ी प्यारी बात कही, “उठ बेटी, तेरे ही पातिव्रत के प्रभाव से राम और लक्ष्मण इस बड़े संकट से पार हुए हैं ।”

उसके बाद बड़ी धूमधाम से राम का राज्याभिषेक किया गया और वह प्रेमपूर्वक प्रजा का पालन करने

लगे । वनवास के उनके सभी साथी सुग्रीव, विभीषण, अंगद, जामवंत आदि अपने-अपने स्थानों को लौट गये । केवल हनुमान ने लौटने से इंकार कर दिया । वह वहीं रहने लगे ।

कुछ समय बाद पता लगा कि सीता मां बनने-वाली हैं । यह जानकर राम ने उनसे पूछा, “बताओ, तुम्हें क्या-क्या चाहिए ?” सीता ने गंगा का दर्शन करने की इच्छा प्रकट की । इसी बीच राज के एक गुप्तचर ने आकर राम को बताया कि प्रजा में सीता को लेकर लोकापवाद फैला हुआ है । राक्षस के घर रह लेने पर भी आपने उनको जो फिर से ग्रहण कर लिया है उसे लोग अच्छा नहीं समझते । यह सुनकर राम बहुत दुःखी हुए । बहुत सोच-विचारकर उन्होंने अपना कठोर कर्तव्य निश्चित कर लिया । उन्होंने अपने भाइयों से कहा कि उनमें से कोई चुपचाप सीता को जंगल में छोड़ आवे । उनके परमभक्त लक्ष्मण ही उनकी यह आज्ञा मानने को तैयार हुए । गंगा-दर्शन के बहाने वह सीता को गंगा-पार ले गये और वहां आंखों में आंसू भरकर उन्होंने सीता को राम की भीषण आज्ञा सुनाई । सुनते ही सीता मूर्च्छित होगई । उन्हें बहुत-कुछ समझा-बुझाकर लक्ष्मण लौट आये । उनके लौटते ही सीता दारुण विलाप करने लगीं । उनके दुःख से दुखी होकर सारा जंगल रोने लगा । पास ही महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था । उस करुण विलाप को सुनकर वह वहां आये और सीता को सान्त्वना देकर अपने आश्रम में ले गये । इधर लक्ष्मण ने लौटकर राम

से सीता की सब बातें कहीं । राम रो पड़े, पर उन्होंने अपने कर्त्तव्य का त्याग नहीं किया । उन्होंने दूसरी स्त्री से विवाह भी नहीं किया । जब उन्होंने अश्वमेध-यज्ञ का अनुष्ठान किया तो यज्ञ में सीता की जगह उन्होंने सोने की मूर्ति बनाकर ही अपने बाएं बैठाया । सीता ने जब यह बात सुनी तो उनके मन में छोड़े जाने का जो दुःख था वह कम हो गया ।

: १५ :

इसी बीच राम को समाचार मिला कि यमुनातट पर लवणासुर नाम का राक्षस मुनियों को बड़ा त्रास दे रहा है । राम ने तुरंत शत्रुघ्न को उसका नाश करने के लिए भेजा । मार्ग में वह वाल्मीकि के आश्रम में ठहरे । उसी रात सीता ने दो तेजस्वी पुत्रों को जन्म दिया । वहां से वह मधुपुरी नगर गये । लवणासुर उन्हें मार्ग में ही मिल गया । घोर युद्ध के बाद उन्होंने उसे मार डाला और मुनियों का संकट दूर किया । वाल्मीकि के आश्रम में राम के दोनों पुत्र लव और कुश धीरे-धीरे बड़े हुए । वे बड़े पराक्रमी थे । वाल्मीकि ने उन्हें अपनी रची रामायण याद करा दी । उधर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के भी दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए । कुछ काल बाद शत्रुघ्न अपने दोनों बेटों को राज्य सौंपकर अयोध्या लौट आये । इन्हीं दिनों अयोध्या में एक ब्राह्मण का लड़का अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ । राम इसका कारण ढूंढने के लिए पुष्पक विमान में बैठकर सब दिशाओं का चक्कर काटने लगे । अंत में पता लगा कि शंबूक नामक एक शूद्र अनधिकार

तपस्या कर रहा था। राम ने उसका सिर काट लिया। सिर काटते ही वह शूद्र सद्गति को प्राप्त हुआ और ब्राह्मण का बेटा जी उठा। वृद्ध ब्राह्मण राम को आशीर्वाद देता हुआ अपने स्थान को चला गया।

कुछ दिन बाद राम ने अश्वमेधयज्ञ का घोड़ा छोड़ा। तीनों लोकों के ऋषि उसमें निमंत्रित किये गये। चारों ओर से धन और यश की वर्षा होने लगी। तभी लव और कुश भी वाल्मीकि-चरित रामायण का गान करते हुए अयोध्या में पहुंचे। राम ने उनके मधुर गायन को चकित होकर सुना और रूपरंग को देखा। सभा स्तब्ध होकर उनके गीत सुन रही थी और रो रही थी। राम ने जो दान उन्हें दिया, वह उन्होंने लौटा दिया। इसके बाद राम वाल्मीकि ऋषि के पास पहुंचे। वहां उन्होंने सारा राज वाल्मीकि को भेंट कर दिया। दयालु ऋषि ने अब सारी कथा राम को कह सुनाई और कहा कि वह सीताजी को पुनः स्वीकार करें। इसपर राम ने कहा कि सीता अयोध्या के प्रजाजनों के सामने अपने विशुद्ध आचरण का प्रमाण दे दें तो वह उन्हें वापस बुला लेंगे।

सीता ने यह बात स्वीकार करली। भरी सभा में गायत्री के समान पवित्र सीता ने माता पृथ्वी से प्रार्थना की—“यदि मैंने मन, वचन और कर्म, किसी प्रकार से भी अपना पातिव्रत भंग न किया हो तो हे धरती माता, तुम मुझे अपनी गोद में ले लो।” सीता की प्रार्थना सुनते ही पृथ्वी फट गई। उसमें से एक सिंहासन निकला, जिसपर समुद्र की तगड़ी पहने साक्षात् धरती माता बैठी थीं।

उन्होंने सीता को गोद में ले लिया और पाताल में समा गई। राम यह देखकर बड़े क्रुद्ध हुए, पर ब्रह्मा के समझाने पर वह शांत होगये और लव-कुश को अयोध्या ले गये।

अश्वमेध-यज्ञ समाप्त हुआ। सब लोग चले गये। भरत सिंधु देश के राजा हुए। उन्होंने अपने तक्ष और पुष्कल नाम के पुत्रों को तक्षशिला और पुष्कलावती का राज्य दिया। राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने अपने पुत्रों अंगद और चंद्रकेतु को कारापथ का राजा बनाया।

यह सब हो जाने पर एक दिन मुनि-वेश धारण करके यमराज रामचंद्र के पास आये और एकांत में बात करने का समय मांगा। यह भी कहा कि हमारी बातचीत के बीच में कोई भी न आवे। अगर कोई आ जाय तो आप उसका त्याग कर देंगे।

लक्ष्मण द्वारपाल बनकर पहरा दे रहे थे। इसी बीच दुर्वासा ऋषि आये और राम से मिलने का हठ करने लगे। लक्ष्मण ने बहुत समझाया, पर वह नहीं माने और शाप देने को तैयार होगये। लक्ष्मण तब राम को दुर्वासा के आने की सूचना देने अंदर चले गये। इस प्रकार प्रतिज्ञा भंग हो जाने पर राम ने लक्ष्मण का त्याग कर दिया। लक्ष्मण ने सरयू नदी में जल-समाधि ले ली। यह जानकर राम बड़े दुःखी हुए। उन्होंने अपने पुत्र कुश को कुशावती का तथा लव को शरावती का राजा बनाया और भाइयों के साथ जंगल की ओर चले। जनता भी पीछे-पीछे चल पड़ी। वह विमान पर चढ़कर स्वर्ग

चले गये और हिमालय पर हनुमान को तथा दक्षिण में चित्रकूट पर विभीषण को अपने दो कीर्तिस्तम्भों के रूप में छोड़ गये ।

: १६ :

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के आठ पुत्र थे । आठों को रामचंद्र भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का राज्य सौंप गये थे । उनमें कुश बड़े थे । वह कुशावती में राज्य करते थे । राम के परमधाम जाने के बाद अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी ने कुश से सपने में आकर कहा कि आप सब भाइयों में ज्येष्ठ हैं । राजा राम के परमधाम चले जाने से अयोध्या सूनी होगई है । आप वहां आकर फिर उसका वैभव बढ़ावें । उसकी प्रार्थना सुनकर कुश कुशावती का राज्य वहां के धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों को सौंपकर अयोध्या आ गये । उनके आने पर अयोध्या का पुराना वैभव लौट आया । वह सुखपूर्वक राज्य करने लगे । एक बार सरयू में जल-विहार करते समय पिता का दिया हुआ दिव्य आभूषण खो गया । पता लगा कि कुमुदनामक नाग ने उसे चुरा लिया है । कुश ने तब गरुड़ास्त्र लेकर नाग को ललकारा । वह तुरंत आभूषण के साथ अपनी बहन को लेकर उनकी शरण में आया । उसने बताया कि गलती से उसकी कन्या ने वह आभूषण पकड़ लिया था । कुमुदने न केवल वह आभूषण लौटाया, बल्कि बहन कुमुदवती का विवाह भी कुश के साथ कर दिया ।

: १७ :

कुमुदवती और कुश के पुत्र का नाम अतिथि हुआ ।

वह सूर्य के समान तेजस्वी था। बड़ा होने पर वह अपने पूर्वजों के समान ही प्रतापी और धर्मात्मा हुआ। एक बार देवताओं के राजा इंद्र की ओर से राक्षसों के साथ युद्ध करते हुए रणक्षेत्र में ही कुश वीरगति को प्राप्त हुए। कुमुदवती उनके साथ सती होगई। अतिथि अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठे। बड़ी धूमधाम से उनका राजतिलक किया गया। उन्होंने बड़ी नीति और कुशलता से राज्य का संचालन और विस्तार किया। उन्होंने मुंह से जो कह दिया, उसे पूरा कर दिखाया। जिसे जो दे दिया उससे फिर लिया नहीं। युद्धक्षेत्र में उन्हें देखते ही शत्रु के छक्के छूट जाते थे। अश्वमेध के लिए जब वह दिग्विजय करने निकले तब उनका काम यद्यपि शत्रुओं को जैसे भी हो हराना था, पर उस समय भी उन्होंने धर्म से ही काम लिया। ऐसा करने से उनका प्रभाव बढ़ गया और वह राजाओं के राजा हो गये। इंद्र ने इनके साम्राज्य पर वर्षा की, यमराज ने रोगों का बढ़ना रोका, वरुण ने जल के मार्ग खोल दिये और कुबेर ने राजकोष भर दिया।

: १८ :

अतिथि के बाद उनके प्रतापी पुत्र निषद ने सागर तक फैली पृथ्वी पर राज किया। उनके बाद अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र नल राजा हुए। नल के बाद नभ और नभ के बाद धनुषधारी पुण्डरीक राजा हुए। पुण्डरीक के पुत्र शांत स्वभाववाले क्षेमधन्वा थे। क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक इतना मधुर बोलते थे कि शत्रु और मित्र उनका समान आदर करते थे। देवानीक के पुत्र अहीनग

बड़े चतुर थे। सबके मन की बातें जान लेते थे। पारियात्र उनके प्रतापी पुत्र थे। इनके पुत्र शिल बड़े शीलवान थे। शिल के पुत्र उन्नाभ विष्णु के समान पराक्रमी थे। उनके पुत्र थे वज्रनाभ, जो वज्र के समान गरजते थे। उनके पीछे शंखण सारी पृथ्वी के राजा हुए। सब देशों को जीतने वाले व्युषिताश्व इन्हींके पुत्र थे। इनके पुत्र विश्वसह और विश्वसह का पुत्र हिरण्याभ था जो विष्णु का अंश था। इनके पुत्र कौशल्य और कौशल्य के पुत्र ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मिष्ठ थे। इनके पुत्र का नाम पुत्र ही था। ये सब उदार और योग्य शासक थे। इसके पीछे पुष्य और फिर ध्रुव-संधि राजा हुए। वह बात के धनी थे। एक दिन जंगल में आखेट करते हुए वह मारे गये। उनके पुत्र सुदर्शन अभी बालक ही थे, पर थे तेजस्वी। उन्होंने बड़ी कुशलता से राज्य किया।

: १६ :

बुढ़ापा आने पर राजा सुदर्शन ने अपने पुत्र अग्निवर्ण को अपना उत्तराधिकारी बनाया और स्वयं तप करने बन में चले गये। अग्निवर्ण कुछ काल तक तो ठीक प्रकार राज्य करता रहा, परंतु बाद में राज-कार्य अपने मंत्रियों को सौंपकर आकंठ विलासिता में डूब गया। प्रजा उसके दर्शनों को तरसा करती थी, पर वह नृत्य, द्यूत, आदि व्यसनों में रत रहता था। उसका विलास इस पराकाष्ठा तक पहुंचा कि वह राजयक्ष्मा से पीड़ित हो गया। धीरे-धीरे वह बहुत दुर्बल हो गया और नौकरों के कंधे का सहारा लेकर चलने लगा। बहुत प्रयत्न

करने पर, भी चिकित्सक उसे न बचा सके । राजमहल के उद्यान में ही गुप्त रूप से उसकी अंत्येष्टि की गई । बाहर ले जाने पर उस रोग के फैलने का डर था । बहुत दिन तक प्रजा को उसका समाचार ही नहीं दिया गया । अंत में मंत्रियों ने प्रजा के नेताओं को इकट्ठा किया और उनकी सम्मति से राजा की पटरानी को सिंहासन पर बैठाया । वह मां बननेवाली थी । सचिवों के परामर्श से वह राज-संचालन करने लगी और प्रजा पुत्र-जन्म की बाट जोहने लगी ।



‘संस्कृत-साहित्य-सौरभ’ की पुस्तकें

9

- | | |
|--------------------------|------------------|
| १. कादंबरी | १७. विक्रमोर्वशी |
| २. उत्तर-रामचरित | १८. मालती-माधव |
| ३. वेणी-संहार | १९. शिशुपाल-वध |
| ४. शकुंतला | २०. बुद्ध-चरित |
| ५. मृच्छकटिक | २१. कुमार-संभव |
| ६. मुद्राराक्षस | २२. महावीर-चरित |
| ७. नलोदय | २३. रत्नावली |
| ८. रघुवंश | २४. पंचरात्र |
| ९. नागानंद | २५. प्रियदर्शिका |
| १०. मालविकाग्निमित्र | २६. वासवदत्ता |
| ११. स्वप्नवासवदत्ता | २७. रावण-वध |
| १२. हर्षचरित | २८. सौंदर्यनंद |
| १३. किरातीजुनीय | २९. कुंदमाला |
| १४. दशकुमार-चरित : भाग १ | ३०. यशस्तिखक |
| १५. दशकुमार-चरित : भाग २ | ३१. क्षितिमंजरी |
| १६. मेघदूत | ३२. प्रतिमानाटक |
| | ३३. तीन नाटक |

५८



१०० सैंतीस नये प्रेसे